राष्ट्रीय सहारा

Date:13-02-21

क्योंकि आप ही उत्पाद हैं

आलोक पुराणिक

ट्वटर और सरकार के बीच के विवाद के कानूनी-संवैधानिक पहलुओं के अलावा एक बड़ा मसला अर्थशास्त्र का भी है। ट्विटर की कंपनी भारत में वो मानक मानने के तैयार नहीं है, जो वह अमेरिका में मानती है। ट्विटर या फेसबुक, व्हाट्सएप से जुड़े विवाद सिर्फ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े विवाद नहीं हैं। इनमें धंधा गहरे तौर पर जुड़ा है। ट्विटर को जब लगता है कि धंधा खतरे में है, तब वह उन अधिकांश खातों को हटा देती है, जिन्हें हटाने का आदेश भारत सरकार देती है। फिर ट्विटर को अपने ब्रांड का ख्याल आता है, तो वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात भी करती है।

व्हाट्सएप-फेसबुक मूलतः कारोबारी संस्थान हैं। ट्विटर कारोबारी संस्थान हैं। कारोबारी संस्थानों की प्राथमिक प्रतिबद्धता मुनाफा कमाने की होती है, रिटर्न कमाने की होती है। रिटर्न-प्रतिफल तब ज्यादा आता है कि जब किसी कंपनी की कारोबारी संभावनाएं बेहतर होती हैं। फेसबुक-ट्विटर लोकतंत्र को बचाने के लिए बाजार में उतरे संस्थान नहीं हैं। यह विशुद्ध धंधे के लिए, कारोबार के लिए और मुनाफे के अधिकतम करने के लिए बाजार में उतरे संस्थान हैं। जाहिर है कोई कारोबारी संस्थान धर्माथ के लिए बाजार में नहीं उतरता, वह पैसे कमाने के लिए ही उतरता है। फेसबुक-ट्विटर भी बाजार में कमाई के इरादे से ही उतरे संस्थान हैं। वे हर हाल में अपने मुनाफों को अधिकतम करना चाहेंगे। सूचनाओं का अपना अर्थशास्त्र होता है। आपके बारे में कुछ जानकारियां तमाम कारोबारियों के लिए बहुत महत्व की हैं।

अमेजन वेबसाइट पर आप कोई किताब खरीदने जाते हैं तो किसी किताब की खरीद के बाद आपको सूचित किया जाता है कि जिन्होंने यह किताब खरीदी उन्होंने ये ये किताबें भी खरीदीं। हो सकता है कि इस सूचना के बाद आप उन किताबों में भी रु चि दिखाएं। यानी आप से जुड़ी यह सूचना कई प्रकाशकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है कि आपकी रु चि किस टाइप की किताबों में है। सूचनाओं से पैसे कमाए जा सकते हैं, जानकारियों को मुनाफे में बदला जा सकता है। अमेजन कंपनी के जुड़े जेफ बेजोस दुनिया के बड़े अमीरों में सिर्फ इसलिए नहीं हैं कि उनकी कंपनी आपके घर में किताब या टीशर्ट डेलिवर कर सकती है। वह बहुत बड़े अमीर इसलिए हैं कि उनके पास करोड़ों लोगों के बारे में ऐसी सूचनाएं जिन्हें कभी भी मुनाफे में तब्दील किया जा सकता है। भारत में पेटीएम कंपनी ने भुगतान से काम शुरू किया था, अब पेटीएम के प्लेटफार्म से म्चुअल फंड भी बिक रहे हैं और शेयर भी। किसी कंपनी के पास किसी ग्राहक के बारे में जानकारियां हों, तो फिर यह तय करना बहुत आसान हो जाता है कि उसे कौन सी सेवाएं और कौन सी वस्तुएं बेची जा सकती हैं। पेटीएम जिन्हें म्चुअल फंड और शेयर बेच रही है, कल को उनके बैंक खाते भी पेटीएम बैंक में खुलवा सकती है, अगर पूरे बैंक के तौर पर काम करने का लाइसेंस पेटीएम को रिजर्व बैंक से मिल जाए, तो। यानी सूचनाओं के सहारे किसी की जेब तक पहुंचा जा सकता है और उसे तरह-तरह के उत्पाद बेचे जा सकते हैं। इसलिए कई कंपनियां अपने उत्पादों और

सेवाओं को मुफ्त में ही दे देती हैं, बस सूचनाएं ले लेती हैं प्रयोक्ताओं से। ये सूचनाएं ही आगे और कमाई करवाती हैं तरह-तरह से। ऑनलाइन कारोबार होने के चलते भौगोलिक सीमाओं का अर्थ नहीं रह गया है।

बायजूस जो मूलत बंगलुरू की कंपनी है, तकनीक के जरिये गाजियाबाद में अपनी सेवाएं बेच सकती है। यानी तकनीक के चलते बाजार विस्तृत हो गए हैं। सूचनाओं के चलते बाजार बहुत व्यापक हो गए हैं और सूचनाएं अपने आप में बहुत कीमती हो गई हैं। कारोबार, मार्केटिंग की दुनिया में एक बात कही जाती है कि अगर आपसे किसी उत्पाद के पैसे नहीं लिये जाते, तो समझिये कि आप ही उत्पाद हैं और आपको ही बाजार में बेच दिया गया है। आप यानी आपसे जुड़ी जानकारियां, आपसे जुड़े तथ्य बाजार में बेच दिए गए हैं और उनका कोई कारोबारी इस्तेमाल कर रहा है। आपके फेसबुक खाते से कोई भी आपकी रु चियों का अंदाज कर सकता है, उनके अनुरूप आपको तमाम वस्तुओं और सेवाओं का ऑफर दिया जा सकता है। तमाम कंपनियां, कारोबारी, राजनीतिक दल इस तरह की जानकारियों के लिए लाखों करोड़ों रु पये देने को तैयार हो जाते हैं। इंटरनेट पर अब सब कुछ बेचा जा सकता है-विचार से लेकर अचार तक-बस ये सूचना होनी चाहिए कि आपके विचार किस तरह के लोगों की रु चि और आपके अचार को वो लोग खरीद सकते हैं, जो दूसरे अचार खरीद रहे हैं।

दूसरे लोग कौन सा अचार खरीद रहे हैं, यह सूचना अपने आप में नये कारोबार के रास्ते खोलती है। मूल सवाल यह है कि ये कंटेट निजी हैं या सार्वजनिक हैं। क्या इनका कारोबारी इस्तेमाल संभव है। कोई कितना आश्वस्त करे सच यह है कि आपकी जो भी सूचना इंटरनेट पर है, उसका कारोबारी इस्तेमाल संभव ही है। इसका कारोबारी इस्तेमाल तब संभव नहीं है, जब ऐसे इस्तेमाल के खिलाफ कड़े दंड और कड़े प्रावधान हों। ऐसा अनायास नहीं है कि तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियां यूरोप या किसी विकसित देश के लिए अलग कानून का पालन करती हैं और भारत जैसे विकासशील देश के लिए उनका रु ख अलग होता है। यूरोप में निजता से जुडे कानून बहुत कड़े हैं। कोई कंपनी अगर उनका उल्लंघन करती है, तो वह कड़े दंड की भागी होती है। पर भारत में निजी सूचनाओं के कारोबारी इस्तेमाल से जुड़ा कानून भी अभी अस्तित्व में नहीं है। इसलिए इस संबंध में तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मनमानी की इजाजत है।

किसी कंपनी को कानून तोड़ने का दोषी तो तब ठहराया जा सकता है, जब संबंधित क्षेत्र के लिए कोई कानून हो। इसलिए पहले भारतीय संसद में निजता से जुड़े कानून पारित होने चाहिए। इसके बावजूद हर प्रयोक्ता को सावधानी बरतनी चाहिए और यह मानना चाहिए कि उसकी सारी सूचनाएं सार्वजनिक हो सकती हैं। जो भी सेवा मुफ्त में मिलती है, उसमें उत्पाद आप ही हो सकते हैं, यह बात कभी भुलाई नहीं जानी चाहिए। बाजार का उसूल यह है कि मुफ्त में यहां कुछ ना दिया जाता। आपकी सूचनाएं बेची जा सकती हैं, यह अहसास सबको होना ही चाहिए। ट्विटर, फेसबुक और व्हाट्सएप यहां पर अपनी और के संवर्धन के लिए हैं, आपकी निजता की रक्षा एक हद तक ही संभव है। उसकी भी कोई गारंटी नहीं है और खासकर तब तो बिल्कुल नहीं, जब इसे लेकर कोई कानूनी ढांचा ही उपलब्ध नहीं है।

जनसत्ता

Date:15-02-21

उद्योग और नवाचार

जयंतीलाल भंडारी

कोरोना महामारी से निपटने वाले टीके आ जाने के बाद यह उम्मीद बंधी है कि आने वाले दिनों में इस संकट से मुक्ति मिलने लगेगी और वैश्विक अर्थव्यवस्था फिर से सामान्य होने की दिशा में बढ़ने लगेगी। हालांकि कई देशों में अभी भी महामारी का कहर जारी है और इसका सीधा असर उन देशों की अर्थव्यवस्था पर स्पष्ट रूप से नजर आ रहा है। भारत भी दुनिया के उन चंद देशों में शामिल हो गया है जिन्होंने कोरोना का स्वदेशी टीका विकसित कर लिया है और देश में तेजी से टीकाकरण का अभियान चला रहे हैं। भारत दुनिया के कई देशों को टीकों की आपूर्ति भी कर रहा है। इन सबका सकारात्मक पक्ष यह है कि अब विकास को रफ्तार देने और अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए शोध और नवाचार (रिसर्च एंड इनोवेशन) पर ध्यान केंद्रित हो रहा है। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने वर्ष 2021-22 के बजट में शोध और नवोन्मेष को आगे बढ़ाने के लक्ष्यों का एलान करते हुए इस क्षेत्र पर पचास हजार करोड़ रुपए खर्च करने की बात कही है। इसके साथ ही नेशनल रिसर्च फाउंडेशन (एनआरएफ) के गठन का एलान भी किया गया है, जो इसी साल से काम शुरू कर देगा।

भारत के शोध एवं नवाचार की अहमियत को दुनिया में स्वीकार किया जा रहा है। हाल में बिल गेट्स भी कोरोना टीके के निर्माण में भारतीय वैज्ञानिकों की शोध और नवाचार की भूमिका और भारतीय नेतृत्व की पहल की सराहना कर चुके हैं। दरअसल कोरोना का स्वदेशी टीका विकसित हो जाने के पीछे वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार और नई तकनीकों की अहम भूमिका रही है। ऐसे में अब ब्रांड इंडिया और मेड इन इंडिया की वैश्विक मांग और वैश्विक स्वीकार्यता सुनिश्चित करने के लिए शोध एवं नवाचार को मजबूत बनाना होगा। शोध एवं नवाचार से संबंधित वैश्विक रिपोर्टों में भारत का स्थान लगातार बढ़ रहा है। विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआइपीओ) द्वारा जारी वैश्विक नवाचार सूचकांक (ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स- जीआइआइ) 2020 में भारत चार पायदान ऊपर चढ़ कर अड़तालीसवें स्थान पर पहुंच गया है और भारत ने शीर्ष पचास में अपनी जगह बना ली है। भारत वर्ष 2019 में इस सूचकांक में बावनवें और 2015 में इक्यासीवें स्थान पर था। पिछले वर्ष ब्लूमबर्ग की एक रिपोर्ट में भी दुनिया के एक सौ पैंतीस देशों की अर्थव्यवस्थाओं को नवाचार के आधार पर जिन पाँच समूह में विभाजित किया गया है, उनके तहत भारत को तीसरे समूह के देशों में शामिल किया गया है। ग्लोबल इनोवेशन रैंकिंग का यह वर्णीकरण संस्थाओं की गुणवत्ता, आइटी इंफ्रास्ट्रक्चर, कारोबारी माहौल और मानव संसाधन के आधार पर किया गया है।

भारत एक दशक से लगातार वैश्विक नवाचार क्षेत्र में उपलब्धि हासिल करने वाला देश है। नए वैश्विक सूचकांक के तहत भारत में कारोबारी विशेषज्ञता, रचनात्मकता, राजनीतिक और संचालन से जुड़ी स्थिरता, सरकार की प्रभावशीलता और दिवालियापन की समस्या को हल करने में आसानी जैसे संकेतकों में अच्छे सुधार किए हैं। साथ ही, भारत में डिजिटल अर्थव्यवस्था, घरेलू कारोबार में सरलता, नए छोटे कारोबार (स्टार्टअप), विदेशी निवेश जैसे मानकों में भी बड़ा सुधार दिखाई दिया है। कोविड-19 के बीच स्वास्थ्य सामग्रियों एवं दवाइयों के निर्माण में हेल्थ रिसर्च ने प्रभावी भूमिका निभाई है। कोरोना काल में पीपीई किट, जीवनरक्षक उपकरण, मास्क और सैनेटाइजर जैसी बेहद जरूरी चीजों का बड़े पैमाने पर देश में ही उत्पादन किया गया और साथ ही इन्हें दूसरे देशों को भी भेजा गया।

भारत जिस वैश्विक नवाचार सूचकांक में आगे बढ़ा है, उस पर पूरी दुनिया के उद्योग-कारोबार की निगाहें हैं। जीआइआइ के कारण विभिन्न देशों को सार्वजनिक नीति बनाने से लेकर उत्पादकता में सुधार और नौकरियों में वृद्धि में सहायता मिलती है। भारत में नवाचार बढ़ने से अमेरिका, यूरोप और एशियाई देशों की बड़ी-बड़ी कंपनियां नई प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतीय आइटी प्रतिभाओं को प्रमुखता दे रही हैं और साथ ही भारत में अपने शोध और नवोन्मेष को बढ़ावा देने के लिए भारत में अपने केंद्र बना रही हैं। इंटरनेट ऑफ थिंग्स, कृत्रिम बौद्धिकता (एआइ))और डाटा एनालिटिक्स जैसे क्षेत्रों में शोध और विकास को बढ़ावा देने के लिए लागत और प्रतिभा के अलावा नई प्रोद्यौगिकी के इजाद के लिए नए छोटे उद्यमियों को भी मौका दिया जा रहा है।

कंसलटेंसी फर्म केपीएमजी ग्लोबल टेक्नोलॉजी इंडस्ट्री इनोवेशन सर्वे के मुताबिक कृत्रिम बौद्धिकता (एआइ), मशीन लर्निंग, ब्लॉकचेन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स जैसे क्षेत्रों में नई खोजों और अनुसंधान के मामले में भारत दुनिया में चीन के बाद दूसरे नंबर पर है। वस्तुत: एआइ के क्षेत्र में भारत में नई क्रांति की इबारत लिखी जा रही है। सरकार देश को एआइ का वैश्विक केंद्र बनाने के लक्ष्य के साथ आगे बढ़ रही है। सर्वे में कहा गया है कि हम देश में सिर्फ ऐसी मशीनों, तकनीकियों, सेवाओं और उत्पादों का प्रयोग करने तक सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि हम उनका निर्माण और विकास दुनिया के लिए करेंगे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में एआइ को नई शिक्षा प्रणाली के साथ इस तरह जोड़ा गया है कि इसमें बड़ी संख्या में कुशल पेशेवरों को तैयार किया जा सके। यह बात महत्वपूर्ण है कि कोविड-19 ने सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए शोध एवं तकनीकी विकास के महत्त्व से अवगत कराया है। पूर्णबंदी के कारण विभिन्न तकनीकी रुझानों में अप्रत्याशित तेजी देखने को मिली। दुनियाभर में उद्योग-कारोबार, शिक्षा, स्वास्थ्य, टेली मेडिसिन और मनोरंजन तक की दुनिया का तेजी से डिजिटलीकरण हो गया। नए-नए कारोबारी मॉडल सामने आए। इनसे ऐसे कई लक्ष्य प्राप्त किए जा सकेंगे, जो आत्मनिर्भर भारत अभियान के लिए जरूरी हैं। नवाचार में आगे बढ़ने के लिए शोध और विकास (आरएंडडी) के विविध आयामों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। भारत में आरएंडडी पर खर्च की राशि जीडीपी के एक फीसदी से भी कम यानी करीब 0.7 फीसदी के लगभग है। जबकि आरएंडडी पर खर्च की दृष्टि से इजरायल, दक्षिण कोरिया, अमेरिका, चीन और जापान जैसे देश भारत से बहुत आगे हैं। भारत में आरएंडडी पर जितना खर्च होता है उसमें उद्योग जगत का योगदान काफी कम है, जबकि अमेरिका, इजरायल, चीन सहित विभिन्न देशों में यह काफी अधिक है। इसलिए विकास में शोध एवं नवाचार की भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए आरएंडडी पर कुल जीडीपी का दो फीसद खर्च सुनिश्चित करना जरूरी है। इसके साथ ही इसमें निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी भी बढ़ानी होगी। मौजूदा समय में भारत में शोध और नवाचार के क्षेत्र में निजी क्षेत्र का योगदान सिर्फ सैंतीस फीसद ही है। हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि हमारे देश की प्रतिभाओं के साथ-साथ कोविड-19 के कारण घर लौटी भारतीय प्रतिभाओं की मदद एआई, शोध एवं नवाचार में ली जाए। भारतीय उद्योगों को वैश्विक स्तर पर ऊंचाई देने के लिए सीएसआइआर, डीआरडीओ और इसरो जैसे शीर्ष संस्थानों की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बनाना होगा।

कोरोना के स्वदेशी टीकों को तैयार करने में शोध एवं नवाचार की जो प्रभावी भूमिका रही है, वैसे ही शोध व नवाचार की भूमिका स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग कारोबार सहित विभिन्न क्षेत्रों में भी दिखाई देनी चाहिए। तभी पूरी दुनिया में भारत की मेड इन इंडिया और ब्रांड इंडिया की पहचान बनेगी और देश आत्मिनिर्भता के लक्ष्यों को हासिल कर पाएगा। शोध व नवाचार से ही देश में विदेशी निवेश भी बढ़ेगा और भारतीय उद्योग-कारोबार सहित पूरी अर्थव्यवस्था लाभान्वित होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:15-02-21

बोलने की आजादी के आर्थिक हित

हरजिंदर, (वरिष्ठ पत्रकार)

चुनाव हारने के बाद से पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने क्या-क्या खोया है? दो चीजें तो जगजाहिर हैं- राष्ट्रपति पद, और दुनिया का सबसे प्रभावशाली पोस्टल एड्रेस, यानी ह्वाइट हाउस। लेकिन चुनाव हारने के बाद इन चीजों को तो उन्हें खोना ही था। एक चीज, जिसकी इस समय पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा चर्चा है, वह है ट्रंप का ट्विटर अकाउंट, जो पिछले महीने की 6 तारीख की कैपिटल हिल की घटना के बाद उनसे छीन लिया गया था। इसका डोनाल्ड ट्रंप के चुनाव हारने से उतना लेना-देना नहीं है, जितना कि उनकी हरकतों से है।

मीडिया की दुनिया में खबरों के बहुत सारे सूत्र होते हैं, लेकिन पिछले चार साल में उनका ट्विटर अकाउंट खबरों का जितना बड़ा स्रोत रहा, उतना शायद कोई दूसरा नहीं रहा। पहली बार राष्ट्रपति पद का चुनाव अभियान चलाने के बाद से अकाउंट पर पाबंदी लगने तक डोनाल्ड ट्रंप ने 34,000 से ज्यादा ट्वीट किए। यानी वह हर रोज औसतन 20 से 25 ट्वीट करते रहे। उनके ये ट्वीट अपने उस कट्टर समर्थक वर्ग से जुड़ने के औजार भी थे, जिसे खुद उन्होंने तैयार किया था। और ऐसे ही औजारों के जरिए उन्होंने इस वर्ग को अमेरिकी संसद पर हमले के लिए भी उकसाया था। इस पर विवाद बढ़ने के बाद उनके ट्विटर अकाउंट को बंद कर दिया गया था।

हालांकि, जब उनके अकाउंट को बंद किया गया, तब भी वह अमेरिका के राष्ट्रपति थे। यह बात अलग है कि तब तक वह चुनाव हार चुके थे। वैसे ट्विटर ने उनके इस अकाउंट को चुनाव नतीजों से पहले ही अविश्वसनीय बना दिया था। उसने उनके ट्वीट पर विवादास्पद या भ्रामक का लेबल लगाना शुरू कर दिया था। इससे कुछ और पहले, कोरोना संक्रमण के समय ट्विटर ने उनके कई ट्वीट पर यह लिखा था कि ट्वीट में दिए गए तथ्य सही नहीं भी हो सकते हैं।

ये सब पुरानी बातें हैं, लेकिन आज इनको एक बार फिर तब याद करना जरूरी है, जब भारत में कुछ अकाउंट को लेकर भारत सरकार और ट्विटर आपस में उलझे हुए हैं। किसान आंदोलन और 26 जनवरी को दिल्ली व लाल किले की घटनाओं के बाद सरकार ने ट्विटर से बहुत सारे अकाउंट व हैशटैग बंद करने के लिए कहा था। ट्विटर ने उन्हें शुरू में

बंद भी किया, पर बाद में ज्यादातर को बहाल कर दिया। सरकार की तरफ से जब सख्ती दिखाई गई, तो ट्विटर ने एक ब्लॉग लिखा, जिसमें यह सोशल मीडिया मंच अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता के चैंपियन की तरह दिखाई देता है।

हमारे सामने ट्विटर के दो रूप हैं। अमेरिका में वह नफरत को रोकने की कोशिश में वहां के राष्ट्रपति तक से भिड़ने की मुद्रा में दिखाई देता है, और भारत में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर सरकार के दबाव का विरोध करता प्रतीत होता है। वैसे एक तीसरा रूप भी है। बाकी तमाम सोशल मीडिया मंचों की तरह ही ट्विटर का भंडार भी नफरत फैलाने वाली सामग्रियों से भरा पड़ा है। वहां जितनी अच्छी बातें हैं, उतनी ही नफरत वाली भी होंगी, या शायद उनसे ज्यादा भी हों। जिस तरह से यह माना जाता है कि पैकेजिंग उद्योग के आने के बाद समाज में कूड़े की मात्रा बढ़ गई है, वैसे ही एक धारणा यह भी है कि सोशल मीडिया के आने के बाद से सामाजिक परिदृश्य में नफरत भी बढ़ गई है। यह भी कहा जाता है कि ऊपरी तौर पर सोशल मीडिया की सभी कंपनियां नफरत की बातों को खत्म करने के संकल्प लेती दिखाई देती हैं, पर यह नफरत ही घुमा-फिराकर उनके लिए मुनाफे का सौदा भी होती है। उसके खिलाफ वे तभी सक्रिय होती हैं, जब पानी सिर के ऊपर से गुजरने लगता है।

सरकारें अभिव्यक्ति की या दूसरी तरह की आजादी पर हल्ला बोलती हैं, जो कोई नई बात नहीं है। यह जरूर है कि इन दिनों इंटरनेट पर पाबंदी जैसा एक नया आयाम इनमें जुड़ गया है, अन्यथा इसमें कुछ भी नया नहीं है। पिछले कुछ दिनों से रूस में जो हो रहा है और पिछले कुछ समय में हांगकांग और युगांडा वगैरह में जो हुआ है। म्यांमार की घटना तो बिल्कुल ताजा है। ये सारी घटनाएं बताती हैं कि नागरिक आजादी पर पाबंदी का काम अब सरकारें नए ढंग से करने लगी हैं। अब वे सीधे उस माध्यम को रोकती हैं, जिनके जरिए लोग आपस में संवाद करते हैं। लेकिन यह पाबंदी काफी महंगी भी पड़ती है, क्योंकि इंटरनेट सिर्फ खबरों, अभिव्यक्ति और संवाद-संपर्क का जरिया नहीं, बल्कि व्यापार और कारोबार का भी माध्यम है। लोगों को लंबे समय तक चुप कराए रखने की बात तो सोची जा सकती है, लेकिन एक हद के बाद उद्योग-व्यापार को रोकना संभव नहीं होता।

इसी पूरे दौर में एक नई चीज जरूर हुई है। सोशल मीडिया चलाने वाली कुछ कंपनियां हैं, जो हमारी अभिव्यक्ति की आजादी की चिंता करती दिखाई देती हैं। पिछले कुछ समय में दुनिया में एक ऐसा बिजनेस मॉडल खड़ा हुआ है, जिसके कारोबारी हित हमारी अभिव्यक्ति की आजादी से चाहे-अनचाहे जुड़ गए हैं। इसके साथ ही यह वही बिजनेस मॉडल है, जिसके हित सनसनी में भी हैं और शायद काफी हद तक नफरत में भी। खबरों में भी हैं और फेक न्यूज में भी। इसमें किसी को अंतर्विरोध भी दिख सकता है और विडंबना भी, हकीकत भी यही है। ये ऐसी कंपनियां हैं, जिन्हें हर देश की सरकार किसी-न-किसी तरह से नियंत्रित करने की फिराक में रहती है, लेकिन वे किसी एक देश के नियंत्रण में नहीं हैं। इसलिए उन्हें पूरी तरह से बंद कर पाना भी संभव नहीं है और शायद इसीलिए कई बार हम उनसे बड़ी उम्मीद भी बांध पाते हैं। यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है, लेकिन अक्सर बहुत सी अच्छी चीजें अंतर्विरोधों के बीच ही खड़ी रह पाती हैं। सरकारें भी इस बात को जितनी अच्छी तरह समझ लें, उनका इसी में भला है।

THE TIMES OF INDIA

Date:15-02-21

Failing system?

Ex-CJI Ranjan Gogoi's remarks starkly underline the need for judicial reforms

TOI Editorials

Rajya Sabha member and former Chief Justice of India Ranjan Gogoi's souring appraisal of the judiciary portrays an institution failing to fulfil individual and national economic aspirations. Of course, Gogoi himself could be seen as part of the problem: His hasty acceptance of a RS seat within months of demitting office hadn't helped the judiciary's cause, raising worries about judicial independence being compromised. Nevertheless, there can be no quarrel with Gogoi's basic thrust on the need for judicial reforms.

His view of a "ramshackle" judiciary and that people going to court regret their decision does no credit to either the government or judges like him who have overseen the country's judicial administration. Judicial reforms remain caught in a limbo, amid decades of power struggle between government and Supreme Court over judicial appointments. The present condition – where four vacancies in SC and 419 openings in high courts remain unfilled amid differences of opinion and procedural wrangles – highlights the rot.

Meanwhile Covid-19 has struck judicial functioning too, as the pandemic has set courts back by a few years in mitigating backlogs. National Judicial Data Grid reveals 3.8 crore pending cases in lower courts, with the last one year itself aggravating pendency burden by nearly 50 lakh cases. 57 lakh matters are pending in HCs. Appointing more judges, streamlining civil and criminal procedures that are delaying case disposal, embracing technology, and ensuring greater synergy between courts, police, government departments and lawyers are a few necessary reforms.

While most judges strive to whittle down the backlog of years past, select SC and HC judges and bureaucrats must be delegated at central and state levels to finalise judicial/ legal reforms and oversee implementation. The archaic judicial infrastructure is a significant deterrent in wooing global investors to India. Despite clocking 63rd position in World Bank's ease of doing business report, India ranked a dismal 163rd in one of its most critical parameters: enforcement of contracts. On the criminal justice side, low conviction rates in sexual offences and large percentage (70%) of undertrial prisoners in the jail population infringe upon fundamental rights. Untangling such a vast ecosystem including laws, institutions, individuals and vested interests may be hard, but a beginning must be made. Now that difficult reforms in areas like agriculture, banking and disinvestment are underway, vitalise the justice system too.

THE ECONOMIC TIMES

Date:15-02-21

‘Ramshackled!’ Fix the judiciary

ET Editorials

Pedants might take objection to former Chief Justice Ranjan Gogoi’s neologism, ‘ramshackled’, but it is more useful to focus on the substance of the problem he has highlighted.The context in which he termed Indian judiciary ‘ramshackled’ might offer some comfort to those who might wish to dismiss Justice Gogoi’s indictment of the judiciary as self-serving — he was offering an explanation as to why he would not sue Trinamool Congress MP Mahua Moitra for her stinging criticism of his conduct as Chief Justice.But that does not take away from the reality of crushing pendency of cases: 3.75 crore at the district level, 56 lakh at the level of the high courts, and around 70,000 in the Supreme Court.

Pendency of cases (43% of those at the high court level are more than five years old, and 22% more than 10 years old) is a gross indicator of dysfunctionality in the legal system.There are more specific ones, especially relating to failure of the judiciary to protect citizens’ right to liberty. There continues to be huge dissonance between the high bar the Supreme Court applies to substantiate a charge of sedition — a couple of men shouting Khalistan Zindabad and Raj Karega Khalsa in the wake of Indira Gandhi’s assassination did not commit sedition, as there was no incitement to proximate, causally linked violence — and the risible ease with which lower courts are provoked to frame charges of sedition against dissenters.Iron ore mining in Goa has ground to a halt for more than 1,000 days on account of missing legal clarity on the validity of mining leases, in the absence of a verdict on the matter by the Supreme Court.The former CJI is spot on when he says a functional judiciary is a necessary condition for attaining a $5 trillion economy.

In 2019, Parliament increased the number of Supreme Court judges to 33. But appointments have been tardy. Court management matters, besides the number of judges. The judiciary must take the lead to raise efficiency, drawing lessons from those high courts that have cut their pendency significantly.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date:15-02-21

A Partisan federalism

Finance Commission dips into states' share for Centre's expenditure, makes system more discretionary

Haseeb A Drabu, [The writer is the former finance minister of Jammu and Kashmir]

In the fireworks of the Union budget, little attention has been paid to the recommendation of the Fifteenth Finance Commission (XVFC). The report was laid before the Parliament and the finance minister announced the acceptance of its recommendation of retaining the share of states in central taxes at 42 per cent. She also stated that on its recommendation revenue deficit grants of Rs 1.18 lakh crore to the states have been provided for in the budget.

To its credit, by retaining the existing share of states in taxes, the XVFC has been principled and pragmatic. It has done so despite serious prodding by the Centre (through the terms of reference) to revise it downwards. Having said that, though, there is much more to a finance commission report than the vertical distribution.

Some of the recommendations, and even the obiter dicta, have far-reaching implications on government finances, both of the Centre and the states. Which is why it is strange that in an otherwise trendsetting transparent budget, the recommendations of the XVFC have been obfuscated. Sample this from the budget documents: "Keeping in view the extant strategic requirements for national defence in a global context, XVFC has, in its approach, recalibrated the relative shares of the Union and the states in gross revenues receipts."

As it turns out, "recalibration" is actually a 1 per cent reduction in the grants to states, which enables the Union to set aside resources for special funding on defence. The states have been made to pay Rs 7,000 crore to "bridge [the] Centre's gap between projected budgetary requirements and budget allocation for defence and internal security defence" — an expenditure that the Centre is obliged to fund.

For the first time, a finance commission has carved out resources meant for distributable statutory grants and dipped into the states' revenue share, as against the tax share, in order to finance the Centre's exclusive expenditure obligation. What has been done is not in line with the system envisaged in the

Constitution. The Constitution is very clear on the charge of revenues collected: The first charge on taxes collected is devolution and statutory commitments, not the Centre's expenditure.

While the amount is just about 0.5 per cent of the total transfers of Rs 14 lakh crore to the states, it is really the thin edge of the wedge that will eventually put the fiscal federal system under systemic strain.

In operational terms, too, this move is a significant departure. So far, the Centre has been used to pre-empting resources from the kitty to be distributed among the states but only to finance expenditures in areas earmarked for states. This was done through the centrally-sponsored schemes, but at least the states' money was being used in the states, even if on a discretionary rather than a criteria basis. Now, with this move of earmarking and financing of funds for sectors, it is the states' money that is being used to finance the Centre's expenditure. This is certainly not cooperative federalism.

If anything, it is heading towards partisan federalism. Consider the issue of horizontal distribution. The criteria used by successive finance commissions for devolving taxes across states have always been linked to need — based on equity, tempered by efficiency. The XVFC has moved the balance sharply: From 92.5 per cent of funds to a state being devolved based on need and equity, the XVFC has reduced these two components to 75 per cent. The remaining 25 per cent are to be devolved on considerations of efficiency and performance. This is the lowest weightage for equity, making the XVFC transfers potentially the least progressive ever.

Apart from these issues arising from what the XVFC has done, there are equally severe problems arising out of what it has not done. While the report is comprehensive in diagnosing and understanding the issues, it has made no effort to prescribe solutions. Far from it, it has not even made any serious effort to review the existing scheme of transfers in light of the changed federal landscape. For instance, the existing criteria have evolved in, and for, a production-based tax system. The XVFC should have reformulated the distributional criteria for a consumption-based tax system. The structural change from production to consumption will make a significant difference to inter se distribution as well as the need, nature and distribution of equalising grants.

Instead, what does the report offer? It merely notes: "Such structural issues may be required to be identified and readjustment may be done to minimise the fiscal and economic impact of GST." Who is to identify these structural issues? And who is to make the readjustment? The only institution that is constitutionally empowered to do it and ideally positioned to take a technically correct and operationally practical view is the Finance Commission. By rolling the can down the road, the XVFC has abdicated its responsibility.

This is the same manner in which the revenue deficit grants have been carried forward. Ideally, the "gap-filling" approach should have been redesigned in light of the compensation law providing a minimum-guaranteed revenue of 14 per cent to every state. The result of not doing so is that the total grants, statutory and non-statutory, account for almost 55 per cent of the total transfers — up from less than 50 per cent in recent years. The share of tax devolution in aggregate transfers has dropped to 45 per cent, making the system more discretionary.

To conclude, the XVFC's substantive award is status quoist, its design is regressive even though its obiter dicta is reformist. In not being aligned with the new landscape of federalism, it is like a red herring prospectus, which contains most of the information pertaining to the operations, but does not address the key issues.